इकाई 17 कबीर और मानव मुक्ति की धारणा

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्‌देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 कबीर के दार्शनिक विचारों का आधार

17.3 मनुष्य की धारणा

17.4 मुक्ति का अर्थ

17.5 मुक्ति के उपाय

17.6 मुक्त मनुष्य का स्वरूप

17.7 राम का स्वरूप

17.8 सारांश

17.9 अभ्यास प्रश्न

17.0 उद्‌देश्य

यह इकाई कबीर के चिन्तन और साहित्य में मानव मुक्ति की धारणा पर आधारित है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- कबीर के दार्शनिक विचारों के आधार को समझा सकेंगे;
- कबीर के सामाजिक चिन्तन और दार्शनिक चिन्तन के संबंध को स्पष्ट कर सकेंगे;
- कबीर के चिन्तन के संदर्भ में मानव मुक्ति की धारणा की जानकारी दे सकेंगे, और
- कबीर के काव्य में अभिव्यक्त मुक्त मनुष्य के स्वरूप को विवेचित कर सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

कबीर भक्तिकाल की निर्गुणधारा के महत्वपूर्ण कवि है। इस निर्गुण धारा का प्रारम्भ कबीर से बहुत पहले हो चुका था। कबीर उसी परम्परा में आते हैं। इस धारा का प्रारम्भ सरहपा आदि सिद्धों और गोरखनाथ आदि नाथों के साहित्य से माना जाता है। वे एक परम्परा के वाहक हैं। कबीर का चिन्तन उनका इस अर्थ में मौलिक चिन्तन नहीं है लेकिन उसमें व्यक्त विचार उनके अपने ही हैं। परम्परा प्राप्त विचारों को कबीर ने अनुभवजन्य प्रमाणों और विवेक से सम्मत निरीक्षण से पुष्ट किया तथा अपने समय में विचारों की 'सत्यता' को प्रतिष्ठित किया। कबीर के विचारों के बीज हमें सिद्धों और नाथों की रचनाओं में मिल जाते हैं। कबीर उनके विचारों को मानते थे और उन विचारों के विरोधियों का खण्डन करते थे। इस वैचारिक संघर्ष का सामाजिक आधार था। इस समाज से कबीर को बल मिलता था। इन परम्परा प्राप्त विचारों को कबीर ने सर्जनात्मक रूप में प्रस्तुत किया। इस सर्जनात्मकता का भी अपना महत्व है। कबीर इतने आत्मविश्वास और इतनी दृढ़ता से अपनी बात कहते हैं, जिनसे ये विचार कबीर के अपने ही लगते हैं। इसलिए इन विचारों की मौलिकता का प्रश्न कभी उठता ही नही। कबीर इनकी प्रामाणिकता को पुष्ट करते हैं। इस विचार परम्परा के भीतर कबीर अपने समय के समाज और मनुष्य पर बारीक टिप्पणियाँ करते हैं।

17.2 कबीर के दार्शनिक विचारों का आधार

कबीर के दार्शनिक विचार आज के युग में भले ही सामान्य लगते हों, परन्तु अपने समय में ये विचार बहुत क्रांतिकारी माने गए थे। उस दौर में ऐसे विचार प्रकट करना बहुत साहस की बात थी। कबीर के विचारों को दो भागों में बाँटा जा सकता है। उनके विचारों का एक भाग उनका समाज संबंधी चिन्तन है। जहाँ वे समाज की परंपराओं, मान्यताओं, विश्वासों का खण्डन करते हैं। उनके विचारों का दूसरा भाग दार्शनिक है, जहाँ वे जीव, आत्मा, परमात्मा, माया आदि का विवेचन करते हैं। आधुनिक चिन्तक, कबीर के सामाजिक चिन्तन से अपनी सहमति व्यक्त करते हैं, परन्तु उनके दार्शनिक चिन्तन से अपने आपको दूर रखते हैं। हालांकि ध्यान से देखने पर पता चलता है कि उनके सामाजिक चिन्तन का गहरा सम्बन्ध उनके दार्शनिक चिन्तन से है। दर्शन से वे शक्ति ग्रहण करते हैं और समाज की परम्परागत शक्तियों से टकराते हैं। इसलिए कबीर के चिन्तन को ठीक से समझने के लिए उनके दर्शन को भी समझने की जरूरत है।

मध्यकाल के अन्य भक्त कवियों के समान कबीर ने मनुष्य की सामूहिक मुक्ति की कोई अवधारणा सामने नहीं रखी। वे मानते थे कि इस पतित समाज में मनुष्य अपने प्रयासों से स्वयं मुक्त हो सकता है। अतः कबीर की मानव मुक्ति की धारणा वैयक्तिक मुक्ति की धारणा थी। उनका मानना है कि गृह-दारा-सुत-भाई से हमारा जो सम्बन्ध है, वह स्वार्थ पर आधारित है। इनके लिए अपनी चेतना को दूषित नहीं होने देना चाहिए।

उनका यह भी मानना था कि विचार से मुक्ति मिलती है। विचार से ज्ञान मिलता है। ज्ञान से भ्रम का निवारण होता है। इससे रास्ता मिलता है और हम सही दिशा में, कर्म की दिशा में आगे बढ़ते हैं। कबीर का एक पद है-

संतौ भाई आई ग्यान की आँधी रे।
भ्रम की टाटी सबै उडाँणी, माया रहै न बाँधी।। टेक।।
हिति चित की द्वै थूँनी गिराँनी, मोह बलिंडा तूटा।
त्रिस्नाँ छाँनि परि घर ऊपरि, कुबधि का भाँडाँ फूटा।।
जोग जुगति करि संतौं बाँधी, निरचू चुवै न पाँणी।
कूड़ कपट काया का निकस्या हरि की गति जब जाँणी।।
आँधी पीछै जो जल बूठा, प्रेम हरि जन भींनाँ।
कहै कबीर माँन के प्रगटे उदित भया तम षींनाँ।।

ज्ञान की इस आँधी के बाद प्रेम की बरसात होती है और प्रेम मुक्ति का रास्ता दिखाता है। तात्पर्य यह है कि मानव मुक्ति का द्वार ज्ञान से खुलता है और ज्ञान गुरु देता है। अतः कबीर की साखियों में सबसे पहले 'गुरुदेव को अंग' आता है। वे कहते हैं कि ज्ञान देने वाला गुरु ही हमारा अर्थात जीव का 'सगा' है। वही पूजनीय है, आदरणीय है। इसलिए इस गुरु का मैं बलिहारी हूँ। गुरु ने जो शब्द का बाण चलाया, उसी से मैं घायल हुआ। तब मन में प्रेम पैदा हुआ -

पीछे लागा जाई था, लोक वेद के साथि।
आगै थै सतगुर मिल्या, दीपक दीया हाथ।।

मैं तो लोक और वेद का अनुकरण कर रहा था। उनके पीछे-पीछे चल रहा था। अपना कोई विवेक तो था ही नहीं। आगे मुझे गुरु मिले और उन्होंने मेरे हाथ में ज्ञान का दीपक दे दिया। अब मैं स्वयं अपना रास्ता देख सकता हूँ। मुझे किसी के पीछे-पीछे चलने की जरूरत नहीं है। यह गुरु जीव को ज्ञान देता है। इसलिए वह ईश्वर के समान महिमाशाली है।

दुनिया में भ्रम का अन्धकार है। कुछ दिखाई नहीं दे रहा। ऐसे में गुरुदेव ने शिष्य के हाथ में ज्ञान का दीपक दे दिया। इस दीपक के प्रकाश में रास्ता स्पष्ट दिखाई देने लगा। चलना तो स्वयं को ही है, परन्तु रास्ता बताने वाला बड़ा है। श्रेष्ठ है। पूजनीय है। अब प्रश्न यह उठता है कि यदि गुरु के पास ही ज्ञान न हो तो क्या हो ? कबीर ने इसकी ओर संकेत किया है-

जाका गुर भी अंधला, चेला खरा निरंध।
अंधा अंधा ठेलिया, दून्यूँ कूप पड़ंत।।

अन्धा गुरु (ज्ञानहीन) अन्धे (अज्ञानी) शिष्य को ठेलकर सही मार्ग पर नहीं ले जा पाएगा, बल्कि दोनों ही कुँए में गिर जाएँगे। तब इनकी मुक्ति संभव नहीं। फिर गुरु भी ऐसी स्थिति में विवश है जहाँ शिष्य में ज्ञान प्राप्ति की लालसा नहीं है। तब कुछ नहीं हो सकता। अतः शिष्य को भी अपनी तरफ से सजग रहना होता है। उसे गुरु पर संशय नहीं करना चाहिए। वह विश्वास करे क्योंकि गुरु और गोविन्द तो एक ही हैं। अतः मुक्ति का सबसे पहला सोपान है, जहाँ व्यक्ति को सही गुरु मिल जाए।

यहाँ कबीर ने ढोंगी साधुओं और गुरुओं की कड़ी आलोचना की है।

पाँड़े कौन कुमति तोहि लागी, तूँ राम न जपहि अभागी।। टेक।।
वेद पुरान पढ़त अस पाँड़े, खर चंदन जैसैं भारा।
राम नाम तत समझत नाँहीं, अंति पड़ै मुखि छारा।।
बेद पढ्याँ का यहु फल पाँडे, सब घटि देखैं रामा।
जन्म मरन थैं तौ तूँ छूटै, सुफल हूँहि सब काँमाँ।।
जीव बधत अरु धरम कहत हौ, अधरम कहाँ है भाई।
आपन तौ मुनिजन ह्वै बैठे, का सनि कहौं कसाई।।
नारद कहै ब्यास यौं भाषैं, सुखदेव पूछौ जाई।
कहै कबीर कुमति तब छूटै, जे रहौ राम ल्यौ लाई।।

यहाँ कबीर बहुत अपनत्व और प्रेम से फटकारते हैं। उसे आगाह करते हैं। उस भाग्यहीन को सलाह देते हैं कि तू वेद पुराण में क्यों अटका हुआ है। राम का जाप किया कर। राम नाम के तत्व को, रहस्य को समझे बिना कोई भी जन्म-मरण के बन्धन से छूट नहीं सकता। जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति ही तो वास्तविक मुक्ति है। धर्म का व्यवसाय करने वाले लोगों पर कबीर बराबर चोट करते हैं। वे पंडितों से पूछते हैं कि इस पाखंड को तुम धर्म कहते हो तो फिर अधर्म क्या है ? धर्म के नाम पर जीव हत्या उन्हें स्वीकार्य नहीं है। कबीर कर्मकांडी पंडितों को फटकार लगाते हैं और उसके माध्यम से आम जन को समझाते हैं कि ऐसे पंडितों का अनुसरण नहीं करें।

17.3 मनुष्य की धारणा

कबीर की मानव मुक्ति की धारणा को समझने से पहले हमें यह जान लेना चाहिए कि कबीर मानव तन को क्या समझते हैं ? आज मनुष्य के बारे में हमारी जो समझ है, कबीर की समझ उससे भिन्न थी। हालाँकि वह समझ अपने आप में पूर्ण थी। इस समझ के आधार पर वे मनुष्य के जीवन का विश्लेषण कर सकते थे। उसे दिशा-निर्देश दे सकते थे। कबीर की कविता में हम इन्हें यत्र-तत्र देख सकते हैं। कबीर मानते हैं कि मनुष्य का शरीर पाँच तत्वों से बना हुआ है- धरती, सूर्य, आकाश, पवन और जल। माता-पिता के मिलन से इस शरीर का जन्म होता है और कुछ काल के उपरान्त इसकी मृत्यु हो जाती है। मृत्यु हो जाने के बाद यह शरीर पाँचों तत्वों में पुनः मिल जाता है। फिर जिसका जन्म होता

है, उसकी मृत्यु होती है। यह अटल सत्य है। यह अनुभव, निरीक्षण और ज्ञानियों के उपदेश से समाज में व्याप्त है। यह शरीर क्षणभंगुर है। यह काया कच्ची है। कुम्हार द्वारा बनाए गए मिट्टी के कच्चे घड़े के समान है। किसी भी क्षण वह मिट्टी में मिल सकता है। इस शरीर में इन्द्रियाँ होती हैं, जिसे वे शरीर रूपी पिंजरे के दस दरवाजे कहते हैं। इन इन्द्रियों का स्वामी 'मन' होता है। मन के आदेश से इन्द्रियाँ चलती हैं। इसके भीतर मनुष्य की आत्मा रहती है। कभी कबीर उसे 'जीव' कहते हैं, कभी आत्मा कहते हैं। यह आत्मा उस परम पिता परमेश्वर का हिस्सा है। इस आत्मा का न जन्म होता है और न मृत्यु होती है। मृत्यु केवल शरीर की होती है। बीमार शरीर होता है आत्मा नहीं होती। बिना शरीर के आत्मा नहीं रह सकती। इसलिए आत्मा को शरीर धारण करना पड़ता है। इस तरह शरीर, इन्द्रियाँ, मन और आत्मा ये सब मिलकर मनुष्य बनते हैं।

मृत्यु की अवस्था में आत्मा शरीर को छोड़कर चली जाती है। यहाँ आत्मा या जीव के पास दो विकल्प होते हैं। एक तो यह कि वह एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में चली जाती है या दूसरा कि वह परमात्मा से मिल जाती है। मध्यकालीन सन्तों-भक्तों के अनुसार इस पृथ्वी पर या सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में 84 लाख योनियाँ हैं। जीव को अपने कर्मों के अनुसार इन योनियों में जन्म लेना होता है। फिर घूमते-घूमते वह मानव शरीर ग्रहण करता है। यह मानव शरीर अमोलक है। यह जीवन मूल्यवान है। इसी जीवन में मनुष्य मुक्त हो सकता है। अन्य जीवधारी कभी भी मुक्त नहीं हो सकते। अतः मुक्ति की धारणा का सम्बन्ध मनुष्य से ही है। मुक्ति का यहाँ अर्थ जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति है। यही कबीर के अनुसार परम पुरुषार्थ है।

17.4 मुक्ति का अर्थ

वैसे भारतीय चिन्तन में चार पुरुषार्थों का उल्लेख मिलता है- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष; परन्तु कबीरदास सिर्फ एक ही पुरुषार्थ मानते हैं मोक्ष अर्थात् मुक्ति। इस तरह कबीर के अनुसार मुक्ति का अर्थ है इस संसार से मुक्ति और उस परमपिता परमेश्वर के साथ एकाकार। कबीर के अनुसार यह मुक्ति इस संसार में रहकर नहीं हो सकती। यह संसार तो कबीर के अनुसार भवसागर है। यहाँ कबीर एक दार्शनिक प्रश्न पूछते हैं, जिसका उत्तर अभी तक नहीं मिला। मानव शरीर के भीतर यहाँ आत्मा या जीव या प्राण (उसे आप जो भी नाम दें) वह कहाँ से आती है, कैसे आती है। इसी से जुड़ा हुआ दूसरा प्रश्न यह है कि मृत्यु के समय शरीर तो यहीं पड़ा रहता है लेकिन यह जीव या प्राण या आत्मा कहाँ चली जाती है ? इन प्रश्नों के उत्तर में कबीर का रहस्यवाद हमारे सामने आता है। बहुत सी ऐसी बातें हैं, जिनका उत्तर आज विज्ञान द्वारा सुलभ है। लेकिन जीवन सम्बन्धी ये प्रश्न तो आज भी वैज्ञानिकों, चिन्तकों और विचारकों के सामने हैं ही -

ता मन कौ खोजहु रे भाई, तन छूटे मन कहाँ समाई।

इस मन को खोजना सरल नहीं है। नारद जैसे ज्ञानी मुनि भी, ध्रुव, प्रह्लाद जैसे भक्त भी शरीर के भीतर रहने वाले इस मन को नहीं देख पाए। सिर्फ गोरखनाथ, भर्तृहरि और गोपीचन्द इस मन से मिलकर आनन्द कर रहे हैं। इस 'अलख निरंजन' से कबीर मिल गया है।

फिर कबीर कहते हैं कि जीव शरीर को छोड़कर चला जाता है। जहाँ जाता है, वहाँ से कोई वापिस नहीं आता। इसलिए उसके कुशल क्षेम के बारे में हम कुछ जान नहीं पाते हैं:

उतीथैं कोई न आवई, जाकूं बूझौं घाइ।
इतथैं सबै पठाइये, भार लदाई लदाई।।

यह भार कबीर के अनुसार कर्मों का भार है अन्यथा कबीर कहते हैं कि धन-माया की गठरी लेकर किसी को जाते हुए देखा नहीं। सारी सम्पत्ति यहीं रह जाती है और आदमी अकेला और खाली हाथ इस संसार से चला जाता है। जो भार लेकर जाते हैं, वह अपने कर्मों या कुकर्मों का भार है। इन कर्मों के अनुसार उसे अपना अगला जीवन जीना है।

कबीर इस संसार में मानव की मुक्ति नहीं देखते। वे इस संसार से परे जाकर मानव-मुक्ति देखते हैं। कबीर के इस निष्कर्ष को समझने के लिए कबीर की संसार संबंधी धारणा, उनकी मानव की समझ, संसार की गतिविधियों आदि को समझने की जरूरत है। इस दृष्टि से देखा जाए तो कबीर की दृढ़ मान्यता है कि चौरासी लाख प्रकार के जीव इस संसार में विचरण करते हैं। इनमें से सिर्फ मनुष्य को ही मुक्ति हो सकती है। अन्य प्राणी मुक्त नहीं हो सकते। उन्हें अपने-अपने कर्मों के अनुसार पुनर्जन्म लेना पड़ता है। कबीर उदाहरण देकर कहते हैं कि भेड़ का बहुत बार मुण्डन होता है, परन्तु वह कभी बैकुण्ठ नहीं जा पाती। इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर कबीर कहते हैं-

नर के साथि सुवा हरि बोलै, हरि परताप न जानै।
जे कबहूँ उड़ि जाइ जंगल में, बहुरि न सुरतै आनै।
साची प्रीति विषै माया सूँ, हरि भगतनि सूँ हासी।
कहै कबीर प्रेम नहीं उपज्यौ, बाँध्यौ जमपुरि जासी।।

यहाँ कबीर कहना चाहते हैं कि सिर्फ राम का नाम लेने से मुक्ति नहीं मिलती। घर में जब गृहस्वामी राम का नाम बोलता है तो तोता भी राम-राम बोलने लगता है। सिर्फ इस बोलने से उसकी मुक्ति नहीं मिलती। वह न तो राम का मर्म समझता है न राम से प्रेम करता है। इसी के समान जो सिर्फ राम का नाम रटते हैं, वे कभी मुक्त नहीं हो सकते। कबीर की अनेक साखियां और पद मिलते हैं, जिनमें वे यह स्थापित करते हैं कि मुक्ति सिर्फ मनुष्य को ही मिल सकती है। शेष प्राणियों को पुनर्जन्म का दुःख झेलना ही पड़ता है। इसलिए मनुष्य का तन बहुत मूल्यवान है।

मनुष्य के रूप में जन्म लेने के बाद उसके पास एक अवसर आता है। इस अवसर का सदुपयोग करके वह जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो सकता है। इसलिए मनुष्य को या जीव को इस अवसर का सदुपयोग करना चाहिए। परन्तु मनुष्य नादानी वश यह अवसर भी खो देता है। कबीर इसकी चिन्ता करते हैं। ऐसे नादान मनुष्य के लिए पीड़ा महसूस करते हैं। इस कारण हम कह सकते हैं कि कबीर मनुष्य से प्रेम करते हैं। उनका चिन्तन और लेखन मनुष्य की हित-चिन्ता से ओत प्रोत है। भले ही उनके तर्कों से कोई असहमत हो सकता है, परन्तु मनुष्य की हित-चिन्ता को अनदेखा नहीं किया जा सकता। इसलिए वे कहते हैं-

ऐसा औसरि बहुरि न आवै, राम मिलै पूरा जन पावै।
जनम अनेक गया अरु आया, की बेगारि न भाड़ा पाया।।

ऐसा अवसर बार-बार आने वाला नहीं है। यहाँ से चूके तो फिर 84 लाख योनियों में भटकना पड़ेगा। इन अनेक जन्मों में आने जाने का कोई किराया तक नहीं मिलता। ऐसा लगता है कि सारे जन्मों में बेगारी ही की है। यह अवसर तो मानव जीवन में ही मिल सकता है। इसलिए मनुष्य को उपदेश देते हुए, उसे आगाह करते हुए कबीर कहते हैं-

जन्म अमोलक जात है, चेति न देखै कोई।।

कबीर बार-बार यह घोषणा करते हैं कि यह नर की देह बार-बार नहीं मिलती है। इसलिए मनुष्य को प्रसन्नतापूर्वक हरि के गुण गाने चाहिए। आगे कबीर कहते हैं :

जब मन नहीं तजै बिकारा, तौ क्यूँ तरिये भौ पारा।।
जे मन छाड़ै कुटिलाई, तब आइ मिलै राम राई।
ज्यूँ जींमण त्यूँ मरणाँ, पछितावा कछु न करणाँ।।
जाँणि मरै जे कोई, तो बहुरि न मरणाँ होई।
चित चंचल निहचल कीजै, तब राम रसाइन पीजै।।
जब राम रसाइन पीया, तब काल मिटया जन जीया।।
ज्यूँ दास कबीरा गावै, ताथैं मन को मन समझावै।
मन ही मन समझाया, तब सतगुर मिलि सचु पाया।।

कबीर के अनुसार यह बहुत सरल है। बस मन की कुटिलता छोड़ दो, तब राम अपने आप मिल जाएगा। कबीर जानते हैं कि यह सरल नहीं है। इसके लिए निस्पृह दार्शनिक दृष्टि की जरूरत है।

17.5 मुक्ति के उपाय

अपने निष्कर्षों में आगे बढ़ते हुए कबीर कहते हैं कि इस शरीर को राम के प्रेम में लगा दें तो मनुष्य को मुक्ति मिल सकती है। परन्तु यह सरल नहीं है। इसमें अनेक बाधाएँ हैं। कबीर ने उन बाधाओं का विस्तार से वर्णन किया है। सामान्य मनुष्य की सहज वृत्तियों के वर्णन में कबीर अपने काल के मनुष्य के क्रियाकलापों का वर्णन करते हैं। कबीर कहते हैं कि मनुष्य के पास पाँच इन्द्रियाँ हैं। ये इन्द्रियाँ स्वाद की तरफ आकर्षित होती हैं। इसलिए इनको वे 'कुसंगी' कहते हैं। जीव के साथ ये पाँच उसे पाप की तरफ ले जाते हैं। मनुष्य को प्रयास पूर्वक इनके प्रभाव से अपने आपको मुक्त रखना है। इसलिए कबीर ने इन्द्रियों से प्राप्त सुख की सबसे अधिक आलोचना की है।

मनुष्य बड़ा होता है, युवा होता है तब उसके शरीर में ताकत आती है। इस ताकत से उसमें अहंकार आता है। इसलिए कबीर कहते हैं कि यह तन तो कागद का पुतला है। जिस पर एक बूंद पानी गिरते ही वह गल जाता है या वह कुम्हार द्वारा बनाए हुए कच्चे घड़े के समान है। कहीं से एक ठोकर लगती है और वह चकना चूर हो जाता है। कबीर के समय में भी गुण्डों, बदमाशों और दुष्टों को अपने शरीर का बहुत अहंकार था। इस ताकत के बल पर वे दूसरों पर रौब जमाते थे। कबीर ने शरीर की ताकत से उत्पन्न अहंकार की कड़ी आलोचना की है। अनेक साखियों और पदों में उनके ये विचार बिखरे पड़े हैं। उन्होंने लिखा-

नर जाँणै अमर मेरो काया, घर घर बात दुपहरी छाया।।
मारग छाड़ि कुमारग जीवै, आपण मरैं और कूँ रोवै।।
एक किया कछू एक करणा, मुगध न चेतै निहचै मरणाँ।।
ज्यूँ जल बूँद तैसा संसारा, उपजत बिनसत लागै न बारा।।
पंच पँषरिया एक सरीरा, कृष्ण कवल दल भवर कबीरा।।

कबीर मनुष्य के सोचने के तरीके पर बात करते हैं। नर का अर्थ यहाँ नर और नारी दोनों से है अर्थात् मनुष्य। मध्यकालीन साहित्य मूलतः पुरुषों को सम्बोधित है, इसलिए यहाँ उन्होंने नर को सम्बोधित किया है। मनुष्य सोचता है कि उसकी काया अमर है। आम आदमी को मृत्यु याद नहीं रहती और इसी कारण वह अनेक कर्म करता है- कुछ अच्छे ओर कुछ बुरे कर्म करता है। उसे उन कर्मों का फल मिलता है। सार रूप में संसार के स्वरूप को व्याख्यायित करते हुए कबीर कहते हैं कि यह संसार तो एक बूँद के समान है, जिसके उत्पन्न होने और नष्ट होने में ज्यादा समय नहीं लगता। मनुष्य यह समझ ले तो उसके मन से सारा अहंकार समाप्त हो सकता है जो सभी बुराइयों की जड़ है। इसके

अलावा धन-सम्पत्ति का अहंकार, राजसत्ता का अहंकार; इन सभी को कबीर मिथ्या घोषित करते हैं। कबीर की रचनाओं को पढ़ते हुए लगता है कि वे इस अहंकार की सबसे अधिक निंदा करते हैं। इसलिए वे कहते हैं किः

तन धन जीवन अंजुरी कौ पानी, जात न लागै बार।
सैवल के फूलन परि फूल्यो, गरब्यो कहाँ गँवार।।
खोटी खाटै खरा न लीया, कछू न जाँनी साटि।
कहै कबीर कछू बनिज न कीयौ, आयौ थौ इहि हाटि।।

अर्थात् तन, धन और यौवन अंजुरि के पानी के समान है। यह देखते-देखते चला जाएगा। इसलिए हे मानव! तुम टेढ़ा टेढ़ा क्यों चल रहे हो, तुम में अकड़ किस बात की है ?

चलत कत टेढौं टेढ़ौं रे।
नऊँ दुवार नरक धरि मूंदे, तू दुरगंधि को बैढी रे।।
जे जारे तौ होई भसमतन, रहित किरम जल खाई।
सूकर स्वाँन काग कौ भखिन, तामें कहा भलाई।
फूटे नैन हिरदै नाहीं सूझै, मति एकै नहीं जानीं।।
माया मोह ममिता सूँ बाँध्यो, बूडि मूवो बिन पाँनी।।
बारु के घरवा मैं बैठी, चेतत नहीं अयाँनाँ।
कबीर एक राम भगति बिन, बूड़े बहुत सयाना।।

अर्थात् बहुत चतुर लोग भी रामभक्ति के बिना डूब जाते हैं। सहज रूप में आए हुए इस गर्व, घमण्ड और अहंकार को कबीर मिथ्या घोषित करते हैं। वे समझाते हैं। तर्क गढ़ते है। फटकारते हैं। वे अनेक उदाहरण देकर समझाने का प्रयास करते हैं।

यहाँ पर कबीर एक तर्क देते हैं। वह यह कि जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु होती है। जब मृत्यु होती है, तब इस माया, मोह, लोभ, लालच, धन, सम्पत्ति, गृह, दारा, सुत का कोई अर्थ नहीं रहता, क्योंकि मृत्यु के बाद कुछ भी आपके साथ नहीं जाता। संसार की सारी वस्तुएँ यहीं इसी संसार में रह जाती है। फिर कबीर एक और स्थापना करते हैं कि जिसकी मृत्यु होती है, उसका जन्म भी होता है। जन्म और मृत्यु दोनों अत्यन्त पीड़ादायक है। जन्म के समय गर्भ में नौ महीने तक रहना भी अत्यंत पीड़ादायक हैं। कबीर मानते हैं कि हम मृत्यु के दर्द को तो जानते हैं, परन्तु जन्म के दर्द का हमें एहसास नहीं होता। कबीर जब मुक्ति की बात करते हैं, तब उनका आशय जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति ही है। यह उनका अन्तिम और प्राथमिक लक्ष्य है।

कबीर किसी के जन्म की बधाई देने को अच्छा नहीं मानते। इसका उदाहरण देकर समझाते हुए वे कहते हैं कि जिस घर में जितना जन्म का उत्साह होता है, बधाई गीत गाए जाते है। उस घर में उतने ही लोगों की मृत्यु होती है, तब उतना ही रोना-धोना होता है।

कबीर इस संसार का, झूठा माया मोह।
जिहि घरि जिता बधावणाँ, तिहि घरि तिता अँदोह।।

इसलिए वे संसार के माया-मोह को ही निरर्थक मानते हैं। अतः मनुष्य को उस धन का संचय करना चाहिए जो आपके अगले जन्म तक साथ चले। अर्थात् मनुष्य को सत्कर्म करना चाहिए। संसार में जब वे दुःख का वर्णन करते हैं, तब वे दो तरह के दुःखों का वर्णन करते हैं- 'जरा-मरण' का दुःख अर्थात् बुढ़ापा और मृत्यु का दर्द। ये दोनों होते ही रहते हैं। इसलिए वे कहते हैं कि आदमी बीमार पड़ता है तो उसे रोग लग जाता है। इस रोग का इलाज करने के लिए वैद्य आता है। यहाँ तक तो ठीक है। बाद में क्या होता है?

बाद में वह रोगी मर जाता है। कोई भी वैद्य उसके मरने को तो नहीं टाल सकता। फिर कुछ दिनों के बाद वह वैद्य भी मर जाता है। जो इलाज करने के लिए आया है, वह अपना भी इलाज नहीं कर पाता। किसी के मरने पर उसके नाते-रिश्तेदार रोते हैं। थोड़े दिनों बाद वे रोने वाले भी मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। अब यदि वैद्य 'विधाता' हो तभी तो इस मृत्यु से बचा जा सकता है। दर्शन के स्तर पर कबीर इसकी कामना करते हैं:

जहाँ जुरा मरण ब्यापै नहीं, मुवा न सुणिये कोइ।
चलि कबीर तिहि देसड़ै, जहाँ बैद विधाता होइ।।

कबीर मानते हैं कि ऐसा हो सकता है। यह कोई अकल्पनीय स्थिति नहीं है। तब प्रश्न उठता है कि मनुष्य को क्या करना चाहिए? कबीर कहते हैं कि मनुष्य अपने मन को पवित्र रखे। काम, क्रोध, मोह, मद और ईर्ष्या से अपने आपको बचाए रखे। सारे समय मनुष्य 'उदर उपाया' करता रहता है। पेट भरने की चिन्ता करता है। लोभ और मोह के बन्धन में वह बँधा हुआ है। यह तो बिना गांठ की जेवड़ी है। फिर काम वासना ? इसका तो जैसे कोई इलाज ही नहीं है।

जग सूँ प्रीति न कीजिए, सँमझि मन मेरा।
स्वाद हेतु लपटाइए, को निकसै सूरा।।टेक।।
एक कनक अरु कामनी, जग में दोइ फंदा।
इनपै जो न बँधावई, ताका मैं बंदा।।।
देह धरे इन माँहि बास, कहु कैसे छूटै।
सीव भये ते ऊबरे, जीवन ते लूटै।।
एक एक सूँ मिलि रहया, तिनहीं सचु पाया।
प्रेम मगन लैलीन मन, सो बहुरि न आया।।
कहै कबीर निहचल भया, निरभै पद पाया।
संसा ता दिन का गया, सतगुर समझाया।।

कबीर अपने मन को समझाते हुए सार रूप में कहते हैं कि इस संसार में मुक्ति की दो ही बाधाएँ हैं- कनक और कामिनी। कनक यहाँ सिर्फ सोने तक सीमित नहीं है। उसमें तमाम धन-सम्पत्ति शामिल है। इसी तरह कामिनी सिर्फ स्त्री नहीं है। स्त्री-पुरुष के बीच जो काम सम्बन्ध है उसे समझना चाहिए। इन दोनों आकर्षणों से बचने पर ही मुक्ति का कुछ उपाय हो सकता है, अन्यथा मानव जीवन इसी में समाप्त हो जाता है। इसलिए मनुष्य को स्तुति, निन्दा, आशा को छोड़ देना चाहिए। मान-अपमान की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। लोहे ओर सोने को एक जैसा समझना चाहिए, तब वह भगवान के समान हो सकता है।

माधौ मैं ऐसा अपराधी, तेरी भगति हेत नहीं साधी।
कारनि कवन जाइ जग जनम्याँ, जनमि कवन सचु पाया।
भौ जल तिरण चरण च्यंतामणि, ता चित घड़ी न लाया।
पर निंद्या पर धन पर दारा, पर अपवादैं सूरा।
ताथैं आवागवन होइ फुनि फुनि, ता पर संग न चूरा।
काम क्रोध माया मद मंछर, ए संतति हम माँही।
दया धरम ग्यान गुर सेवा, ए प्रभु सुपिनै नाँहीं।।
तुम्ह कृपाल दयाल दमोदर, भगत बछल भौ हारी।।
कहै कबीर धीर मति राखहु, सासति करौं हमारी ।।

कबीर की ये मान्यताएं उनकी रचनाओं में बिखरी पड़ी है। कबीर बहुत आत्मीय पीड़ा से कहते हैं कि प्रतिदिन मनुष्य की देह जा रही है। बचपन चला गया, यौवन भी चला

जाएगा। इसी क्रम में बुढ़ापा आएगा और फिर मृत्यु का संकट आएगा।

जाई रे दिन ही दिन देहा, करि लै बौरी राम सनेहा।।
बालापन गयौ जोबन जासी, जुरा मरण भौ संकट आसी।
पलट केस नैन जल छाया, मूरिख चेति बुढ़ापा आया।।
राम कहत लज्या क्यूँ कीजै, पल पल आउ घटै तन छीजै।
लज्या कहै हूँ जम की दासी, एकै हाथि मूदिगर दूजै हाथ पासी।।
कहै कबीर तिनहूँ सब हार्‌या, राम नाम जिनि मनहु बिसार्‌या।।

इस पद में कबीर फटकारते नहीं हैं। वे आत्मीयता से अपना अनुभव, निरीक्षण और ज्ञान बताते हैं। यहाँ कबीर अपने श्रोता को डराना नहीं चाहते। वे चाहते हैं कि श्रोता उनसे सहमत हो जाए। वे कहते है कि यह शरीर दिन-दिन जा रहा है। अर्थात् शरीर की मृत्यु एकदम नहीं होती। धीरे-धीरे होती ही रहती है। इसलिए हे पागल या भोले मनुष्य! उस राम से स्नेह कर लो। बचपन तो चला ही गया है। यहाँ एक अर्थ यह भी निकलता है कि कबीर बालकों को नहीं समझा रहे हैं। युवा होने के बाद, समझ आ जाने के बाद समझाते हैं। युवा अपने यौवन को स्थायी समझते हैं। कबीर का मानना है कि यह सही नहीं है जैसे बचपन चला गया है, वैसे ही यौवन भी चला जाएगा और यौवन के जाने के बाद बुढ़ापा और मृत्यु का आना अवश्यंभावी है। इसलिए तुम्हें राम का नाम लेने में लज्जा क्यों आ रही है ? कबीर आगाह करते हैं कि अब देखो तुम्हारे बालों का रंग बदल गया। आँखें खराब होने लगी है। उसमें से बराबर पानी आने लगा है। यही तो बुढ़ापा है। यह आ गया है। अब भी चेत सकते हो। इनके उपाय के रूप में कबीर कहते हैं कि जिसने अपने मन से राम को बिसार दिया है- जो राम को भूल गए हैं, जिनकी स्मृति में राम नहीं है, उसका जीवन हारा हुआ ही समझो। कबीर ने ऐसे अनेक पद लिखे हैं जिनमें उनकी छवि एक आत्मीय सलाहकार की है; उपदेशक की नहीं है।

कबीर समझाते हुए कहते हैं कि यदि जीवन की गिनती करें तो बारह बरस तो बचपन में ही चले गए। फिर बीस बरस तक कोई तपस्या नहीं की। तीस बरस का होने तक राम का सुमिरन नहीं किया। बाद में जब बूढ़े हो जाओगे तब पश्चाताप के अलावा कुछ नहीं बचेगा। सिर और पैर कांपने लगेंगे। आँखों में पानी आने लगेगा। ठीक से बोलना भी कठिन जो जाएगा इसलिए मानव जन्म लिया है तो 'करि ल्यौ जे कछु करणाँ।' जो कुछ तुम सार्थक करना चाहते हो, वह कर लो। सार्थक की जो अवधारणा कबीर के पास थी, उसे कबीर ने अभिव्यक्त भी किया है। मानव जीवन निरर्थक नहीं जाना चाहिए। इस रूप में कबीर की यह धारणा आज भी प्रासंगिक है।

इस क्रम में वे अन्य मतावलम्बियों की आलोचना भी करते हैं :

जौ तुम्ह पंडित आगम जाँणौ विद्या व्याकरणाँ।
तंत मंत सब ओशदि जाणैं, अंति तऊ मरणाँ।।
राज पाट स्यंधासण आसण, बहु सुंदर रमणाँ।
चंदन चीर कपूर विराजत, अंति तऊ मरणाँ।
जोगी जती तपी संन्यासी, बहु तीरथ भरमणाँ।
लुंचित मुंडित मोनि जटाधर, अंति तऊ मरणाँ।
सोचि बिचारि सबै जग देख्या, कहूँ न ऊबरणाँ।
कहै कबीर सरणाई आयौ, मेटि जामन मरणाँ।।

अब अपने विरोधी मतों के क्रियाकलापों का जिक्र करते हुए कबीर उनसे प्रश्न करते हैं कि माना कि तुम पंडित हो, तुम्हें आगम का ज्ञान है। व्याकरण भी पढ़ रखा है। और भी विद्याएँ

तुमको आती हैं। तुमको औषधियों का भी ज्ञान है। सब ठीक है, लेकिन तुम्हारे ज्ञान की तो एक सीमा है। अन्त में तो तुम्हें भी मरना ही है। तुम्हारे पास इस ज्ञान के अलावा लौकिक वैभव भी है। राजसी ठाट-बाट है। मनोरंजन के सब साधन हैं। शरीर पर पूरा प्रसाधन कर रखा है। चन्दन, कपूर सब है, परन्तु अन्त में तो तुम्हें भी मरना ही है। जितने भी योगी, यती, संन्यासी हैं, जिन्होंने बहुत से तीर्थों का भ्रमण कर रखा है या कुछ केश रहित है परन्तु अन्त में तो उन्हें भी मरना ही है। कबीर कहते हैं कि सारे संसार को सोच-विचार करके मैंने देख लिया है। अन्त में यही पाया है कि मृत्यु अटल है। मृत्यु है, इसका अर्थ है कि फिर से जन्म लेना होगा। मुक्ति तो नहीं मिल रही है न। इसलिए कबीर इस बात पर जोर देते हैं कि यदि आपने ज्ञान प्राप्त नहीं किया है, तो यह जन्म आपने यों ही गुमा दिया।

चेति चेति मेरे मन चंचल, जब लग घर में सासा।
भगति-जाव परभाव न जइयौ, हरि के चरन निवासा।।

इसलिए कबीर मनुष्य को इस संसार से दूर रहने की सलाह देते हैं। सामान्य मनुष्यों को चेतावनी देते हुए कबीर कहते हैं कि जिस घर में तुम (जीव) बोलते और चलते हो; वह घर अर्थात् तुम्हारा शरीर भी तुम्हारा नहीं है। तब बाकी चीजें कहाँ तुम्हारी है। जब मृत्यु आती है तो शरीर को जला देते हैं या जानवर खाते हैं। जिस तन को इतना सँवारा था, उस तन को लेकर मिट्टी में डाल दिया गया है। आमतौर से मनुष्य अपनी देह को संवारता है। उसे सुन्दर दिखने की चाह रहती है। कबीर यहाँ कहते हैं कि जिस शरीर पर सुगन्ध का लेप किया जाता है, वह शरीर तो अन्त में लकड़ी के साथ जला दिया जाता है। शरीर को मोटा करने के लिए इतनी मेहनत करते हो, उसे अन्त में अग्नि को समर्पित करते हैं या सियार खा जाते है। इसलिए सिर्फ शरीर को संवारने या उसे शक्तिशाली बनाने की जरूरत नहीं है। जीवन का उद्देश्य शरीर से आगे है। शरीर की सेवा से कुछ अलग है।

कारनि कौन सँवारै देहा,
यहु तनि जरि बरि ह्वैहैं षेहा।।
चोवा चंदन चरचत अंगा, सो तन जरत काठ कै संगा।।
बहुत जतन करि देह मुटियाई, अगनि दहै कै जंबुक खाई।।
जा सिरि रचि रचि बाँधत पागा, ता सिरि चंच सँवारत कागा।
कहि कबीर सब झूठा भाई, केवल राँम लह्यौ ल्यौ लाई।।

17.6 मुक्त मनुष्य का स्वरूप

कबीर ने इस पर भी विचार किया है कि मुक्त मनुष्य कैसा होता है। हालांकि कबीर की दृष्टि में ऐसे मनुष्य बहुत कम होते हैं। ऐसा व्यक्ति जिसमें काम, क्रोध और लोभ की भावनाएँ नहीं होतीं-

तेरा जन एक आध है कोई।
काम क्रोध अरु लोभ बिंबर्जित, हरिपद चीन्हैं सोई।।टेक।।
राजस ताँस सातिग तीन्यूँ, ये सब तेरी माया।
चौथे पद कौं जे जन चीन्हैं, तिनहिं परम पद पाया।।
असतुति निंद्या आसा छाँड़ै, तजै माँन अभिमानाँ।
लोहा कंचन समि करि देखै, ते मूरति भगवानाँ।।
च्यंतै तौ माधौ च्यंतामणि, हरिपद रमैं उदासा।
त्रिस्ना अरु अभिमाँन रहित है, कहै कबीर सो दासा।।

ऐसा मुक्त मनुष्य तो कोई-कोई है। संसार में ये अल्पमत में हैं। कबीर चाहते हैं कि मनुष्य ऐसा ही बन जाए। ऐसे व्यक्ति में काम, क्रोध और लोभ की भावनाएँ है ही नहीं। सिर्फ भगवान के चरण कमलों पर उसका ध्यान है। राजस, तमस और सत्व इन तीनों गुणों को छोड़कर जो चौथे गुण में रहता है- उसे परम पद प्राप्त होता है। स्तुति, निन्दा और आशा का जिसमें लेशमात्र भी न हो। यहाँ तक कि सम्मान की भावना और अभिमान जिसमें बिलकुल न हो। जो लोहा और सोना को एक जैसा तुच्छ मानकर चलता हो। जो विचार सिर्फ ईश्वर का करता हो और जो हरि के चरणों में उदास रहता हो, ऐसा व्यक्ति सही अर्थों में दास है- अर्थात् वह आदर्श मनुष्य है। कबीर के अनुसार वही इस संसार की मनोवैज्ञानिक बाधाओं से मुक्त रहता है।

ऐसा व्यक्ति सभी मानवीय बुराइयों से रहित होता है। तृष्णा और अभिमान उसमें नहीं होता। यदि ध्यान से देखा जाए तो ये सारे दुर्गुण मानसिक हैं। ऐसा व्यक्ति 'आपै पुरिखा आपै नारी' है। फिर वह रहता ऐसे है जैस 'नां हम जीवत न मूवले मांही' इसी तरह कबीर उसकी अन्य विशेषताएँ बताते हुए कहते हैं-

सौ धन मेरे हरि का नांउ, गांठिए बांधौ बेचि न खांउ।।
नांउ मेरे खेती नांउ मेरे बारी, भगति करौं मैं सरनि तुम्हारी।
नांउ मेरे सेवा नांउ मेरे पूजा, तुम्ह बिन और न जानौ दूजा।।
नांउ मेरे बांधव नांउ मेरे भाई, अंत कि बेरियाँ नाँव सहाई।
नांउ मेरे निरधन ज्यूँ निधि पाई, कहै कबीर जैसे रंक मिठाई।।

दार्शनिक रूप में यहाँ कबीर कहते हैं कि सबमें हम ही हैं ओर हममें सब हैं अर्थात् यहाँ दूसरा कोई नहीं है। इसलिए तीनों लोकों में उस एक का ही प्रसार है। वही कटोरा है। वही थाली है। सदाफल वही है तो नीम्बू भी वही है। पुरुष वही है और नारी भी वही है। इसलिए हिंदू वही है तो मुसलमान भी वही है। मेरे पास न खेती है न बाड़ी है। मैं सिर्फ भगवान की भक्ति करता हूँ। न सेवा करता हूँ न पूजा करता हूँ। सब कुछ परमात्मा का नाम है। मेरा भाई-बन्धु भी कोई नहीं है। जो कुछ है वह ईश्वर है।

सामाजिक व्यवहार में ऐसा व्यक्ति दूसरे को कभी ठगता नहीं। भले ही दूसरे उसे ठग लें, दूसरों के ठगने से दुःख भी होता है। ऐसे ही व्यक्ति की हरि से भेंट हो सकती है जिसने अपना 'आपा' मिटा दिया हो। ईश्वर अहं भाव के विसर्जन से मिलता है।

17.7 राम का स्वरूप

कबीरदास अपनी कविता में 'राम' के स्वरूप का भी उद्घाटन करते चले हैं। राम के स्वरूप को जानने से पहले यह जानना आवश्यक है कि राम का निवास कहाँ है ? इस प्रश्न का उत्तर कबीर ने एक साखी में दिया है-

कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूंढै बन माँहि।
ऐसै घटि घटि राम हैं, दुनियाँ देखै नाँहिं।।

एक हरिण होता है, जिसकी नाभि में कस्तूरी होती है। कस्तूरी की जब सुगन्ध फैलती है, तब हरिण उसे जंगल में ढूढ़ता है कि यह सुगन्ध कहाँ से आ रही है ? अब हरिण को यह पता नहीं है कि कस्तूरी तो उसकी ही नाभि में है। उस हरिण की तरह यह दुनिया भी नादान है, क्योंकि राम तो प्रत्येक 'घट' में अर्थात् प्रत्येक जीवित शरीर में व्याप्त है। परन्तु, नादान मनुष्य उसे बाहर ढूँढता रहता है। कबीर का मानना है कि मुक्ति की साधना कोई मुश्किल काम नहीं है। वह तो अपने भीतर ही है।

रहस्यवादी उक्तियों और उलबाँसियों में कबीर ने राम के स्वरूप का विस्तृत विवेचन किया है। उन उक्तियों को कबीरदास कभी-कभी बहुत सरल करके भी कहते हैं। हालाँकि वे कहते हैं कि जो सचमुच में पण्डित होगा- समझदार होगा, वही इसे समझ पाएगा। मूर्ख लोग इसे नहीं समझ पाएँगे। कबीर के 'राम' कैसे हैं :

पंडित होइ सु पदहि बिचारै, मूरिष नाँहिन बूझै।
बिन हाथनि पाँइन बिन काँननि, बिन लोचन जग सूझै।।टेक।।
बिन मुख खाइ चरन बिनु चालै, बिन जिभ्या गुँण गावै।
आछै रहै ठौर नहीं छाड़ै, दह दिसिहीं फिरि आवै।।
बिनहीं तालाँ ताल बजावै, बिन मंदल षट ताला।
बिनहीं सबद अनाहद बाजै, तहाँ निरतत है गोपाला।।
बिनाँ चोलनै बिनाँ कंचुकी, बिन हीं संग संग होई।
दास कबीर औसर भल देख्या, जाँनैगा जस कोई।।

लौकिक अनुभवों के संदर्भ में राम के स्वरूप का विवेचन करते हुए कबीर कहते हैं। किसी वस्तु को बताने के लिए लोक में वजन एक पैमाना होता है। कोई वस्तु भारी होती है या हल्की होती है। फिर उसको नाप तौल कर बता दिया जाता है कि अमुक वस्तु कितनी भारी है ? इस समझ और कबीर के अनुभव के बीच कोई तालमेल नहीं हैं। अतः कबीर कहते हैं'-

भारी कहौं त बहु डरौं, हलका कहूँ तो झूठ।
मैं का जाँणों राम कूँ, नैनूँ कबहूँ न दीठ।।

दीठा है तो कस कहूँ, कह्या न को पतिचाई।
हरि जैसा है तैसा रहौ, तूँ हरिषि हरिषि गुण गाइ।।

इन साखियों में कबीर 'हरि' की छवि को वर्णित करते हैं। 'हरि' या 'राम' न भारी है, न हल्का है ये उसका वर्णन कर ही नहीं कर सकते क्योंकि आंखें तो उनकी लौकिक है। लौकिक आखों में वह अपरिमित छवि कैसे समाहित हो सकती है ? इसलिए मैं अपनी पराजय स्वीकार कर लेता हूँ। मैंने इन आँखों से उसे कभी देखा ही नहीं। मान लो मैंने 'हरि' को देख लिया। तो भी मैं कहूँ कैसे ? मेरे शब्दों में यह सामर्थ्य ही नहीं है कि उस परमात्मा का वर्णन कर सकूं। फिर भी यदि मैंने 'कह' दिया तो भी उसका विश्वास कौन करेगा ? इसलिए इस विवाद में न पड़ते हुए अपना काम करते हैं। हरि जैसा है, वैसा ही रहो। रहने दो। इस विवाद को छोड़कर प्रसन्न हो-होकर उनके गुणों का गान करो। यही हमारे वश में है। इसलिए यही मैं करता हूँ और यही तुम भी करो।

इसी तरह एक प्रश्न यह भी उठता है उस अविगत की गति का बयान कैसे करें। यहाँ कबीर एक प्रश्न करते हैं। अच्छा यह बताओ कि पहले गगन बना या पहले पृथ्वी ? पहले पवन का अस्तित्व हुआ या अग्नि का ? सूर्य पहले आया या चन्द्रमा ? पूरी सृष्टि के निर्माण की प्रक्रिया क्या रही होगी ?

राम राइ अविगत विगति न जानै, कहि किम तोहिं रूप बखानै।
प्रथमे गगन कि पुहमि प्रथमे प्रभू पवन कि पाँणीं।
प्रथमें चंद कि सूर प्रथमे प्रभू, प्रथमे कौन बिनाँणीं।।
प्रथमें प्राँण कि प्यंड प्रथमें प्रभू, प्रथमे रकत कि रेत।
प्रथमे पुरिष की नारि प्रथमे प्रभू, प्रथमे बीज की खेत।।
प्रथमे दिवस कि रैणि प्रथमे प्रभू, प्रथमे पाप कि पुन्य।
कहै कबीर जहाँ बसहु निरंजन, तहाँ कुछ आहि कि सुन्य।।

परमपिता परमेश्वर सामान्य लौकिक मनुष्य जैसा नहीं है। लौकिक मनुष्य के हाथ, पाँव, कान, आँख सब होते हैं। इन इन्द्रियों के द्वारा वह संसार को जानता-समझता हैं परन्तु परमात्मा के लिए यह बाध्यता नहीं है। वह तो बिना मुँह के भी खा सकता है और बिना पाँवों के भी चल सकता है। बिना जीभ के ही वह बोल सकता है। अतः उसे लौकिक मनुष्य के संदर्भ में समझने की जरूरत नहीं है। वह तो इन सबसे इतर है। अलग है निरपेक्ष है।

17.8 सारांश

इस इकाई में आपने कबीर की कविता में मानवमुक्ति की धारणा से संबंधित प्रमुख बिन्दुओं का अध्ययन किया। कबीरदास ने मुक्ति के बहुत सारे उपायों का वर्णन अपने काव्य में किया है। कबीर मानते हैं कि मनुष्य किसी दूसरे को मुक्त नहीं कर सकता अर्थात सुधार नहीं सकता। दूसरा व्यक्ति अपनी प्रवृत्ति के अनुसार ही चलेगा और कबीर के अनुसार नरक की यातना भोगेगा। उसे अपने कर्मों का फल अवश्य मिलेगा। कबीर ने कर्म फल वाद में विश्वास किया था इसलिए उनके यहाँ स्थान पर सत्कर्म पर बल दिखाई देता है। इसी सत्कर्म को उन्होंने मुक्ति का मार्ग बताया। यह सत्कर्म व्यक्ति स्वप्रेरणा और स्वविवेक से ही करता है। जिन लोगों का चित्त शुद्ध नहीं है, अनेक विकार हैं, पाप करते हैं, षड्यन्त्र करते रहते हैं, वे कभी मुक्त नहीं हो सकते।

राम के इस रूप के कारण कबीर धर्म और मुक्ति सम्बन्धी सभी कर्मकाण्डों को खारिज कर सके। राम न मन्दिर में है न मस्जिद में। इसका अर्थ हुआ कि तीर्थस्थान की व्यवस्था सम्बन्धी जितने भी कार्य हैं- पूजा-पाठ, पुजारी, भेंट, दान-दक्षिणा आदि इन सब से जुड़ी हुई सभी चीजें बेमानी है। इसलिए कबीर कह सके कि यदि पत्थर के पूजने से (अर्थात् मूर्तिपूजा से) भगवान प्राप्त होते हैं तो मैं पहाड़ को पूज सकता हूँ। इससे तो यह आटा पीसने वाली चक्की अच्छी है जिससे संसार अनाज पीसकर खाना खाता है। इसी तरह कंकर-पत्थर जोड़कर मस्जिद बनाई। फिर उस पर चढ़कर मुल्ला बांग देता है। क्या खुदा बहरा हो गया है ? इस तरह धर्म के नाम पर किए गए सभी तरह के कार्यों का कबीर विरोध करते हैं। उस समय धर्म ही, धार्मिक क्रियाकलाप ही मुक्ति की राह दिखाते थे। कबीर ने इस एक दार्शनिक अवधारणा से सभी प्रचलित मान्यताओं का खण्डन कर दिया है। यह दुर्लभ है। जिस प्रकार पेड़ से फल टूट जाने के बाद वह वापिस पेड़ पर लग नहीं सकता, उसी प्रकार मृत्यु के बाद आप दुबारा उस देह को प्राप्त नहीं कर सकते।

17.9 अभ्यास प्रश्न

1. कबीर के अनुसार मुक्ति का क्या अर्थ है ? भारतीय चिन्तन में मान्य पुरुषार्थ से यह किस तरह से अलग है ?
2. कबीर के दार्शनिक विचारों का आधार स्पष्ट कीजिए।
3. लौकिक मनुष्य और मुक्त मनुष्य में क्या अन्तर है ? क्या मुक्त मनुष्य सम्भव है ? अपने विचार व्यक्त कीजिए।
4. कबीर के मुक्ति सम्बन्धी विचारों से आप कहाँ तक सहमत या असहमत हैं ?
5. कबीर और तुलसी के राम का अन्तर स्पष्ट कीजिए।